E-ISSN: 2583-9667
Indexed Journal
Peer Reviewed Journal
https://multiresearchjournal.theviews.in

Received: 07-05-2026
Accepted: 13-06-2026
Published: 10-07-2026

INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCE RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY

Volume 4; Issue 3; 2026; Page No. 76-78

आदिवासी अस्तित्व की संघर्षगाथा 'मरंग घोड़ा नीलकंठ हुआ'

डॉ. नेहा सिंह

इस्माईल, नेशनल महिला पीजी कॉलेज मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.22127533

Corresponding Author: डॉ. नेहा सिंह

सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख में आदिवासी जीवन,प्रकृति के साथ उनके सहसंबंध तथा विकास एवं औद्योगीकरण के कारण उत्पन्न विस्थापन व पर्यावरणीय संकट का बहुत ही सहज एवं मार्मिक विश्लेषण किया गया है।आदिवासी समाज के लिए प्रकृति केवल जीवन निर्वाह का साधन नहीं अपितु उनके अस्तित्व के लिए साध्य है।किंतु उत्तराधुनिकता की इस दौड़ में अत्यधिक खनन, विकास के नाम पर जंगल की कटाई ने जनजाति अस्तित्व को संकट में डाल दिया है, 'मरंग घोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास के संदर्भ में यूरेनियम खनन से उत्पन्न रेडियो धर्मी प्रदूषण,विस्थापन,स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न समस्याओं तथा उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को चित्रित किया गया है इस उपन्यास में मरंग घोड़ा के आदिवासियों के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि विकास की असली कीमत प्रायः प्रकृति पर निर्भर इन आदिवासी समाज की चुकानी पड़ती है, यूरेनियम के खनन से उत्पन्न खतरनाक विकिरण से जल, जंगल, ज़मीन,वायु तो प्रदूषित हुई ही साथ ही इन वंचित लोगों को कैंसर,विकलांगता,बांझपन,कुपोषण जैसी गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं से भी जूझना पड़ता है।इसके अतिरिक्त यूरेनियम से निर्मित परमाणु ऊर्जा से स्वयं को सशक्त मानने वाले देशों के लिए भी यह उपन्यास एक प्रश्न चिह्न खड़ा करता है कि कुछ वंचित समूहों के जीवन के बदले किया यह विकास क्या वास्तविक विकास है? साथ ही इस उपन्यास में प्रकृति एवं मनुष्य के बीच तारतम्यता व संतुलन बनाये रखने का संदेश भी दिया गया है जिससे सम्पूर्ण मानवता संकटग्रस्त न हो।

मूल शब्द: आदिवासी समाज, विस्थापन, यूरेनियम खनन, रेडियोधर्मी प्रदूषण

प्रस्तावना

आदिवासी, सामूहिकता एवं सहजीविता के आधार पर जीवन जीने वाला ऐसा समुदाय है जो जंगल,पहाड़, नदियों से सौहार्द स्थापित कर, पशु पक्षियों के बीच अघोषित नियमों का पालन करते हुए अपनी परंपरा एवं संस्कृति को लोककथाओं, कहानियों, गीतों, नृत्यों, त्योहारों में सहेजे हुए प्रकृति के असली सेवक हैं। "किसी भी समाज के पास जीने का अपना दर्शन होता है।इसी तरह से हमारे जो आदिवासी समुदाय हैं उनमें धरती और इस सृष्टि के हर सजीव को देखने का अपना-अपना। एक नजरिया है"।[१] प्रकृति इनके लिए पूजनीय ही नहीं है बल्कि परिवार के किसी सदस्य से बढ़कर प्रिय भी है। परंतु सबसे बड़ी विडंबनान यह है कि प्रकृति के सबसे बड़े सेवक जल, जंगल, ज़मीन से विस्थापि हो रहे हैं है क्योकि जंगल के वनोपजों से इन्हें वंचित किया जाता रहा है, उनके खेतों और झोपड़ियों को खाली करवाकर खनन प्रकिया संचालित की जाती रही है है। फलस्वरूप रोजी रोटी की तलाश में प्रकृति के सानिध्य में रहने वाले जनजातियों को शहर जाकर मजदूरी करने के लिए मजबूर हैं । लेकिन परिस्थिति इससे भी जटिल और भयावह तब हो जाती है जब इनके जीवन को खतरे में डालकर देश के विकास की नींव रखी जाती है। "मारंग घोड़ा नीलकंठ हुआ" विकास के इसी द्वंद्व की कथा है जिसकी क़ीमत जंगलवासियों को चुकानी पड़ती है। इस उपन्यास की कथा मूल रूप से,प्रमुख चरित्र सगेन उसके ततंग जंबीरा, सगेन का मित्र एवं पत्रकार आदित्य श्री व मरंग घोड़ा के मूल निवासियों के इर्द गिर्द चलती है। सारंडा की मूल भूमि छोड़कर जंबीरा भी मरंग घोड़ा में आकर मजदूरी करने लग जाता है । सागेन का बचपन भी मारंग घोड़ा की हरियाली बीतने लगता है। लेकिन जल्दी ही यहाँ नए खदानों को खोलने के लिए झोपड़ियों को तोड़ने,पेड़ों को काटने और खेतों को खाली करने का कार्य शुरू हो जाता है। यहाँ से जंबीरा,सागेन और मरंग घोड़ा में बदलाव की का नया अध्याय आरम्भ हो जाता है और विस्थापन का शिलशिला शुरू हो जाता है। प्रारंभ में तो स्थानीय लोगों को कुछ मुआवजा देकर खेतों झोपड़ियों पर क़ब्ज़ा कर लिया जाता और उन्हें उसी खदान में मजदूरी पर रख लिया जाता है सगेन के ततंग और पिता भी इसी खदान में मजदूरी करने लग जाते हैं। उन्नति की अंधी दौड़ में औद्योगीकरण का विकास होने लगता है, जंगल काटे जाने लगते हैं,

कोयले, लोहे की खदाने खोलकर पृथ्वी का दोहन किया जाने लगता है ।इसी होड़ में यूरेनियम जैसी खतरनाक और जानलेवा परमाणु ऊर्जा निर्मित करने वाले खनिज के हानिकारक विकिरण प्रभाव को भी नजरअंदाज कर दिया जाता है। यह स्थिति और भी दयनीय तब हो जाती है जब इन्हीं जानलेवा खदानों में मजदूरी करने हेतु ये जनजाति अभिशप्त हो जाते हैं जबकि इनकी संस्कृति में मज़दूरी करने की मनाही है, "जो काम हमारे सिंगबोंगा को हमारे पुरखों को बिल्कुल पसंद नहीं था आज पेट पालने के लिए हमें वही करना पड़ रहा है...... पत्थरों से सोना निकालने का काम असुरों का था"।[२] सागेन के पूर्वजों की इन बातों से यह सपष्ट है कि प्रकृति का किसी भी प्रकार का दोहन जनजातियों ने कभी नहीं किया। खनन आदि का काम असुरों का था ये असुर आज के समय में वहीं हैं जो प्रगति,औद्योगीकरण एवं विकास के नाम पर जंगल समाप्त करते जा रहे हैं।, जिसकी वजह से प्रदूषण,जलवायु परिवर्तन व वैश्विक तापमान में वृद्धि जैसी समस्याएं सामने आ रही हैं जिसके फलस्वरूप ग्लेशियर पिघलना, बाढ़, सूखा जैसे कहर, व कैंसर, चर्मरोग, श्वास तंत्र संबंधी रोगों का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। क्योंकि धरती मनुष्य की आवश्यकताओं की तो पूर्ति कर सकती है लालच की नहीं। लालच के इसी शिकंजे में फंस जाता है मरंग घोड़ा जहाँ यूरेनियम की खदान खोली जाती है। परमाणु ऊर्जा के उत्पादन हेतु खनन के दौरान निकलने वाले यूरेनियम से उत्पन्न होने वाले रेडियोधर्मी प्रदूषण मरंग घोड़ा को देखते ही देखते अपने चंगुल ले लेता है। जिससे न केवल वहाँ की जनजातियों का स्वास्थ्य ही बुरी तरह प्रभावित होता बल्कि वहाँ की भूमि,जल,हवा भी जहरीली हो जाती है और जीव जंतु भी विकृत होने लगते हैं ।सगेन के ततंग जंबीरा भी इसी यूरेनियम खदान में काम करते हैं और यूरेनियम की पीली धूल में सन कर घर लौटते हैं जिसे देखकर सगेन अपने ततंग से पूछता है कि, "यूरेनियम की धूल से क्या आपको परेशानी नहीं होती है?,इस पर ततंग जवाब देते हुए कहते हैं, "कैसी तकलीफ़ सगेन, जब अपने खेतों में काम करता था तो भी तो धूल मिट्टी उड़ उड़कर देह को भर देती थी।कादो से पूरी धोती सन जाती थी अब मिट्टी के बदले पत्थरों की धूल ही सही"।[३] जंबीरा की इन बातों से यह तो सपष्ट हो जाता है कि ये लोग यूरेनियम विकिरण के ख़तरों से पूरी तरह अनजान तो हैं ही साथ ही खदान के मालिकों ने भी कभी इन्हें विकिरण के ख़तरों से कभी आगाह नहीं किया तभी तो सरल, सहज, आदिवासियों को यूरेनियम की धूल और खेतों की मिट्टी धूल में कोई अंतर नहीं समझ आता है। यहीं नहीं खदान के आस पास के लोग खदान से निकलने वाले यूरेनियम युक्त पत्थरों का उपयोग अपनी झोपड़ियों की निर्मिति में भी कर लेते हैं, डंपिंग डैम से निकलने वाले कचरे से निर्मित सफेद मैदान में सगेन और उसके साथ के सभी बच्चे खेला भी करते हैं, खदान के आस पास उगे घास पत्तों को वहाँ के जीव जंतु आहार बनाते हैं। इसके अतिरिक्त बिना किसी हेलमेट या मास्क के मजदूरों को खदानों में काम भी करना पड़ता है। इसी दौरान एक बार खदान में विस्फोट करते हुए एक हादसे में सगेन के पिता की मृत्यु हो जाती है। जमीनों खेती से विस्थापित किए गए इन स्थानीय लोगों को तो कभी कभी इन जहरीले खदानों में भी मजदूरी नहीं मिल पाती तब ऐसे में उन्हें अपने परिवार के भरण पोषण की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

धीरे-धीरे मरंग घोड़ा में यूरेनियम खदानों से उत्पन्न विकिरण का खतरनाक प्रभाव बच्चों में विकलांगता, त्वचा कैंसर, महिलाओं में बांझपन, नवजात शिशुओं की मृत्यु के रूप में सामने आने लगता है। खून की उल्टी करते हुए और कैंसर पीड़ित होकर सगेन के दादा -दादी की भी मृत्यु हो जाती है। इन समस्याओं को वहाँ के स्थानीय अंधविश्वासी लोग कुछ समय तक डायन का प्रकोप मानते रहे। लेकिन सगेन अपनी पढ़ाई लिखाई के दौरान जल्दी ही यूरेनियम विकिरण के दुष्प्रभाव को समझने लग जाता है, हिरोशिमा के परमाणु बंब विस्फोट के बाद कई दशकों तक वहाँ के बच्चों में विकलांगता पायी जाती रही इस तथ्य से अवगत होने के बाद वह यह भली भाँति समझ जाता है कि मरंग घोड़ा की असली डायन यूरेनियम की यह खदान है ।

कई वर्षों तक मरंग घोड़ा के लोग विस्थापित होते रहे, उनके लिए वनोपजों पर प्रतिबंध लगाए जाते रहे, जाने अनजाने उनके स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ किया जाता रहा । तब प्रश्न यह उठता है कि क्या केंद्र या राज्य सरकार यूरेनियम विकिरण के हानिकारक प्रभावों को जानते हुए भी सुरक्षा मानकों को पूरी तरह से अनदेखा कर मरंग घोड़ा के जल, जंगल,ज़मीन को प्रदूषित होने देते रहे, देश के कोनों से लाया जाने वाला तमाम रेडियोधर्मी प्रदूषकों को वहाँ डंप करते रहे और वहाँ के स्थानीय लोगों को मौत के मुंह में धकेलते रहे। "आख़िर क्यों वहाँ के अशिक्षित,अल्प शिक्षित आदिवासियों को इतनी बड़ी और भयानक सच्चाई से अब तक अनजान रखा गया, क्यों नहीं बताया गया कि टेलिंग डैम के ऊपर से नंगे पाव चलना या बच्चों को वहाँ खेलना स्वास्थ्य के अत्यंत घातक है,क्यों खुदाई के दौरान निकलने वाले ऐसे पत्थरों को जिनमें कम मात्र में यूरेनियम होता है सड़कों के किनारे यूँ फेंक दिया जाता है, जिसे अज्ञानतावश कितने ही लोग उठाकर ले जाते हैं और घर की दीवार,छत बनाने के काम लाते हैं। उनसे निरंतर गामा किरणों या रेडान गैस का शिकार होते रहते हैं"।[४] उन दिनों वहाँ जंगल की कटाई का मामला, विस्थापन के बदले थोड़ा बहुत मुवावजा, आदिवासियों को जंगल के वनोपजों पर रोक, उन्हें जंगल में प्रवेश पर मनाही, जैसे मामलों पर आंदोलन होने लगे थे जिसमें सगेन भी बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेता है परंतु उसका असली मकसद तो वहाँ के लोगों को रेडियोधर्मी विकिरण के दुष्प्रभावों के प्रति जागरूक करना रहता है जिसे वह उनके धर्म,संस्कृति, परंपरा का हवाला देते हुए समझाने का प्रयत्न करता है, "जब आप लोगों के संथाली समाज में पूजा स्थल पर स्थित एक पेड़ काटे जाने पर सजा का प्रावधान है तब खदान,मिल या डैम बनाने के लिए जो सैकड़ों पेड़ काटे जा रहें हैं उसकी क्या दशा होगी"।[५] क्योंकि विकिरण के दूरगामी व भयंकर परिणाम से सगेन अवगत हो चुका था इसलिए उसने अपने साथियों के साथ मिलकर जंगल आंदोलन का रूख रेडियोधर्मी विकिरण की ओर MOAR मरंग घोड़ा ऑर्गेनाइजेशन अगेंस्ट रेडिएशन की और मोड़कर इस आंदोलन को व्यवस्थित रूप देता है। "भले ही मुआवजा देकर कंपनी ने कुछ लोगों का भला किया हो पर इसके कारण वातावरण तो प्रदूषित होता ही रहेगा ना, हमारी आने वाली पीढ़ियाँ तो बीमार होती ही रहेगी ना, हमारी विकलांगता,हमारी असामयिक मौत देखकर हमारे पुरखों की आत्मा रो रही है कंपनी चाहे कितना भी मुवावजा क्यों न दे,बीमारों के इलाज की व्यवस्था कर दे मगर हमारे स्वास्थ्य,हमारी स्वच्छ हवा जो हम ग़रीबों की एक मात्र पूंजी वापस नहीं ला सकती......... जहरीले सांपों को बिल में ही रहने देना बुद्धिमानी है बाहर लाना नहीं"।[६] इस प्रकार अपने पर्यावरण,प्रकृति को बचाने और आने वाली पीढ़ियों को स्वस्थ रखने के लिए

ऊपर बनायी गई फिल्म के द्वारा, इस समस्या को अंतराष्ट्रीय पहचान भी मिल जाती है जिसे यहाँ की सरकारें, खदान मालिक सालों से नजरअंदाज करते रहे थे। इस दौरान कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आते हैं जैसे कि केंद्र व राज्य सरकारों ने यूरेनियम खनन के दुष्परिणामों को जानते हुए भी मजदूरों के लिए किसी तरह के सुरक्षा मानकों का ध्यान नहीं क्यों नहीं रखा? दूसरा यह कि देश के आणविक कचरे को मरंग घोड़ा में ही क्यों डंप किया जा रहा है ?तीसरा कि आख़िर आदिवासी इलाक़े को ही डंपिंग के लिए क्यों चुना जा रहा है किसी अन्य सामान्य नगर अथवा महानगरों वाले के इलाके को क्यों नहीं?, क्या आण्विक ऊर्जा का कोई और विकल्प नहीं हो सकता है? इन्हीं कुछ पहलुओं को ध्यान में रखते हुए मोआर आंदोलन और भी सजग हुआ इसी दौरान इन्हें यह तथ्य भी पता चलता है कि केवल भारत का मरंग घोड़ा ही इस विकिरण प्रदूषण को नहीं झेल रहा बल्कि अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस व प्रशांत महासागर के आस पास के आदिवासी इलाकों में भी किए गये न्यूक्लियर टेस्ट का विरोध कुछ संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है।इसका अर्थ तो यही है कि आदिवासियों सुरक्षा को किसी ने भी गंभीरता से नहीं ली, भले ही उनके अस्तित्व,भाषा,संस्कृति,को बचाने का कितना ही दिखावा क्यों न किया जाये। तभी तो सरकार की तमाम योजनाएं केवल कागजों पर खानापूर्ति करके ही रह जाती है।मोआर के प्रतिनिधि उपरोक्त समस्याओं से जूझ ही रहे थे कि पोखरण का परमाणु परीक्षण उन दिनों देश की सुरक्षा एवं विकास के क्रम एक में ऐतिहासिक घटना के रूप में दर्ज होती है।, लेकिन शायद बहुत कम लोगों को ही यह बात पता होगी कि इस ऐतिहासिक घटना के लिए सबसे बड़ी क़ीमत मरंग घोड़ा के आदिवासियों को ही चुकानी पड़ी थी। यहाँ पुनः कुछ एक सवाल हमारे सामने आता है कि विकास की कीमत सदैव निम्न, दलित व आदिवासियों को ही क्यों चुकानी पड़ती है? दूसरी बात [illegible] परमाणु बम्ब किसी भी देश की उपलब्धि है या विनाश की नींव? क्या तमाम परमाणु बम्ब रखने वाले देशों ने जापान के हिरोशिमा हमले से किसी भी तरह की सबक नहीं ली? जबकि इसके घातक परिणामों से सभी वाक़िफ़ हैं जैसा कि धर्मवीर भारती ने अंधायुग में युद्ध की विभीषिका को दर्शाया भी है;

[illegible]
यदि लक्ष्य सिद्ध हुआ ओ नरपशु तो आगे आने
वाली सदियों तक पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी,
शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुष्ठग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जाएगी”।

[illegible], आदित्य श्री की मेहनत से मोआर का विकिरण विरोधी आंदोलन अंतराष्ट्रीय रेडियो ऐक्टिव विकिरण विरोधी आंदोलन का हिस्सा बन जाता है। इस उपन्यास में वर्णित यूरेनियम खदानों से उत्पन्न विकिरण की समस्या केवल मरंग घोड़ा तक ही सीमित नहीं है।वर्तमान में दुनिया के कई देश रेडियो एक्टिव विकिरण के भयंकर दुष्प्रभावों को जानते हुए भी परमाणु ऊर्जा का उत्पादन कर विकास की अग्रिम पंक्ति में खड़े होना चाहते हैं। हालाकि उन्नति की यह क़ीमत जंगल, पहाड़ों, द्वीपों में बसे कुछ आदिवासी समुदायों को चुकानी पड़ती है। क्योंकि, “जहाँ कोयला है मैंग्नीज या बाक्साइड अथवा यूरेनियम है, वही आदिवासी भी हैं। कोयले की खदाने हजारों एकड़ में फैली हैं,ज़मीन के ऊपर और नीचे भी..... उन जमीनों पर बसने वाले लोग कौन थे? या कहाँ चले गए हैं वे लोग,क्या किसी ने पूछा? लाखों लोग उजाड़ गए खदानों में और लाखों लोग बेघर हो गए डैमों में जिसमें ८० प्रतिशत आदिवासी हैं।विस्थापित होकर लोग रोज़गार की खोज में चल दिए बड़े शहरों की ओर कट गए अपनी भाषा, संस्कृति और जड़ो से”।[८] इसके अतिरिक्त, भयंकर और दूरगामी प्रभावों को जानकर भी विकास के नाम पर परमाणु ऊर्जा संयंत्रों की स्थापना करना मनवाता एवं प्रकृति के लिए भी पूर्णतः सुरक्षित नहीं है। जबकि इसके स्थान पर सौर्य ऊर्जा, जैविक ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जैसे नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग करना ज़्यादा उचित है। कम से कम इसके उपयोग से इंसान और प्रकृति रेडियोएक्टिव विकिरण से तो सुरक्षित रहेगा क्योंकि इनका प्रभाव काफ़ी भयंकर दूरगामी होता है। हालाकि प्रकृति के अतिदोहन से यहाँ भी बचने की आवश्यकता है क्योकि ऊर्जा का ऐसा कोई स्रोत नहीं जिसे अतिदोहन से नुक़सान न पहुँचा हो प्रकृति और मनुष्य के मध्य संतुलन से ही दुनिया चलती है।, इसलिए चाहिए की सुविधाभोगी इंसान ऊर्जा का उपयोग आवश्यकतानुसार ही करे अन्यथा सुनामी, बढ़, सूखा जैसी आपदाएँ आती रहेंगी साथ ही प्रदूषण का विकराल रूप मनुष्य को धीरे धीरे मारता रहेगा और परमाणु ऊर्जा उत्पादन से उत्पन्न रेडिएक्टिव विकिरण के प्रभाव से इंसानियत विकलांग होती जाएगी। इन सबके बीच सर्वाधिक भुक्तभोगी होंगे वे जंगलवासी जिन्हें भोगविलास से कोई सरोकार नहीं है, बल्कि वे प्रकृति सबसे बड़े सेवक हैं। लेकिन जब मौकापरस्त लोग उनके इलाक़े में जाकर खनन आदि का कार्य करते हैं तो न केवल उन्हें विस्थापित होना पड़ता है बल्कि उनके अस्तित्व को भी अनदेखा किया जाता है तभी तो देश से लेकर विदेशों तक परमाणु ऊर्जा संबंधित क्रियाकलापों को उन्हीं क्षेत्रों में अंजाम दिया जाता है। तब सवाल यह उठता है कि क्या इनके जीवन का कोई मोल नहीं है उनको पूर्णतः संरक्षित करने के बजाय उनके अस्तित्व को अनदेखा करके उन्नति का मार्ग प्रशस्त करना कहाँ तक सही है।

संदर्भ

1. वंदना टेटे (संपादन) आदिवासी दर्शन व साहित्य, नेशनल पब्लिकेशन पृष्ठ ५५
2. महुआ माजी, मरंग घोड़ा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली,प्रथम संस्करण पृष्ठ संख्या १२९
3. वही, पृष्ठ संख्या९०
4. वही, पृष्ठ संख्या १६३
5. वही, पृष्ठ संख्या १६६
6. वही, पृष्ठ संख्या १७७
7. धर्मवीर भारती, अंधायुग \
8. रमणिका गुप्ता, आदिवासी अस्मिता का संकट, सामयिक पेपरबैक नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या १७

Creative Commons (CC) License
This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.